मेरी प्रतिबद्धता

८ दिसम्बर १९७९

चौधरी चरण सिंह

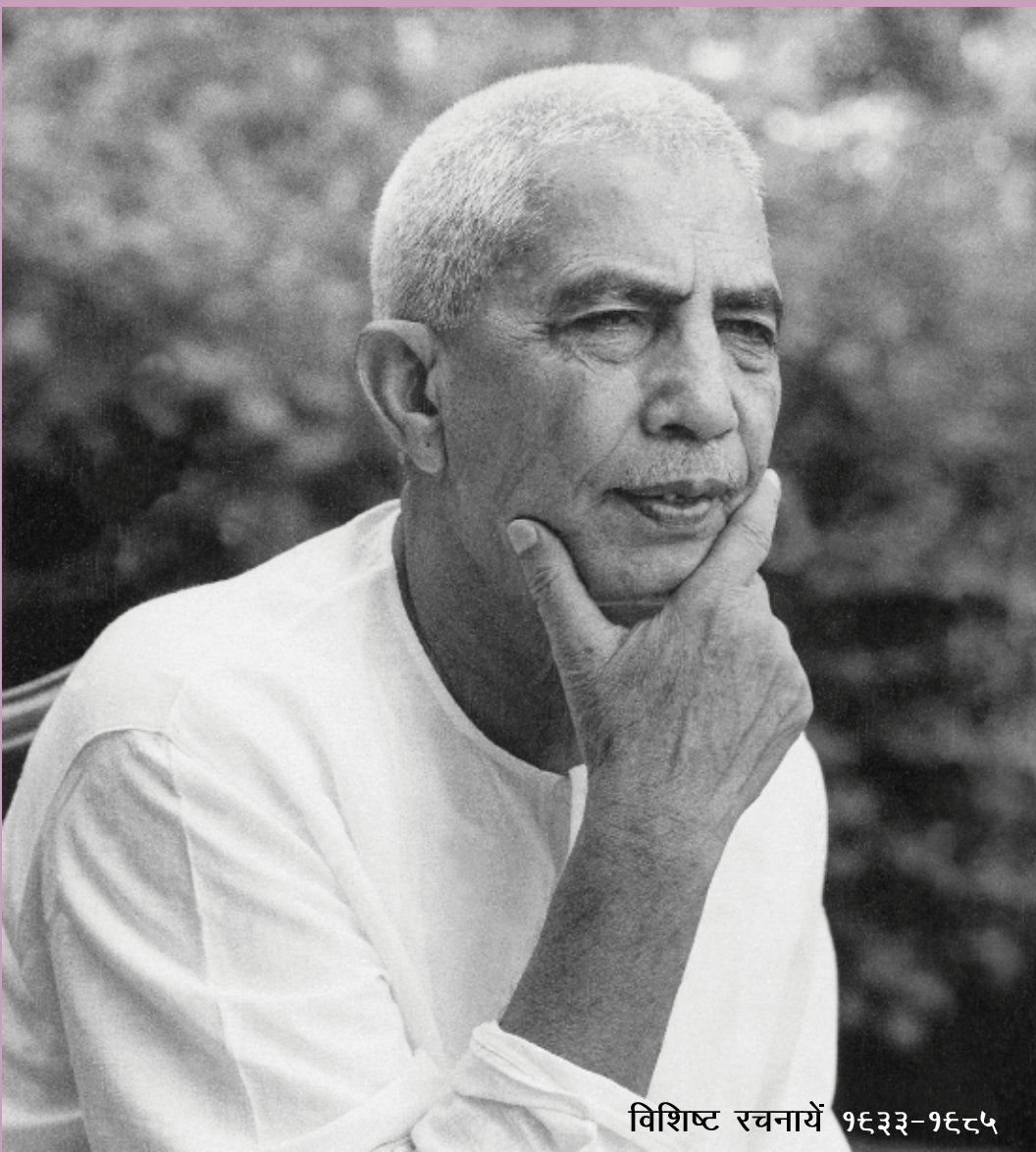

विशिष्ट रचनायें १९३३-१९८५

२६ जनवरी २०२२
चरण सिंह अभिलेखागार द्वारा प्रकाशित
www.charansingh.org
info@charansingh.org

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन को केवल पूर्व अनुमति के साथ
पुनः प्रस्तुत, वितरित या प्रसारित किया जा सकता है।
अनुमति के लिए कृपया लिखें info@charansingh.org

अक्षर तथा आवरण संयोजन राम दास लाल
सौरभ प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, ग्रेटर नोएडा, भारत द्वारा मुद्रित।

चरण सिंह के पिता मीर सिंह तथा माता नेत्र कौर, १९५०

चरण सिंह का जन्म २३ दिसंबर १९०२ को "एक साधारण किसान के यहां छप्पर छवाये मिट्टी की दीवारों से बने घर में हुआ था, जहां आंगन में एक कुंआ था, जिसका पानी पीने और सिंचाई के काम आता था।"[1] संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के मेरठ जिले के नूरपुर गांव में एक पट्टेदार गरीब किसान की कच्ची मढ़ैया में पैदा हुआ यह शिशु आज़ाद भारत में देहात की बुलंद आवाज बना।

---

* चरण सिंह के अपने शब्दों में

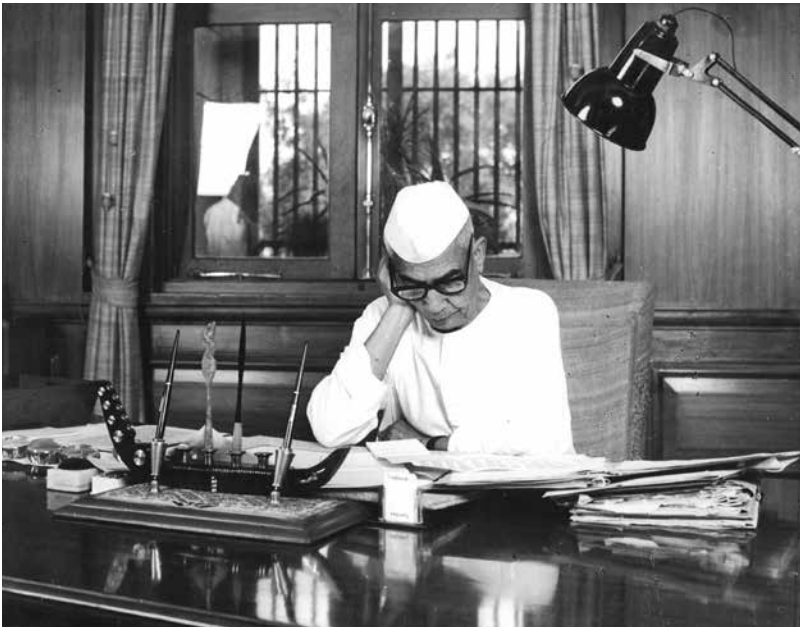

चौधरी चरण सिंह
भारत के प्रधान मंत्री। दिल्लीं, १९७९

ग्रामीण भारत के जैविक बुद्धिजीवी

२२
मेरी प्रतिबद्धता

यों तो चौधरी चरणसिंह ने राष्ट्र से सम्बद्ध प्रत्येक समस्या पर विशद विचार व्यक्त किये हैं किन्तु किसान ट्रस्ट की पत्रिका 'रियल इंडिया' के ८ दिसम्बर १९७९ के अंक में, 'ह्वाट आई स्टैंड फॉर' शीर्षक से प्रकाशित इस लेख में, उन्होंने समग्र रूप से इन समस्याओं के संदर्भ में अपने विचार रखे हैं। इस लेख को उपसंहार खण्ड में देने का निहितार्थ यही है कि आर्थिक नीति, ग्राम विकास, भूमि सुधार, जाति, मजदूर वर्ग, अल्पसंख्यक, शहरी समस्या, भाषा तथा अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर, संक्षेप में, चौधरी साहब की प्रतिबद्धता क्या थी, यह इस एक ही लेख से स्पष्ट हो जाता है।

मेरे एवं मेरे सामाजिक–आर्थिक विचारों के बारे में कुछ धारणाएं अमूमन लोगों ने बना रखी हैं। वे धारणाएं सम्भवतः सही स्थिति को प्रदर्शित नहीं करतीं। इसलिए जनता के बीच इन धारणाओं की व्याख्या जिस हद तक मैं कर सकता हूं, करना मेरा कर्तव्य है।

शुरू में, हालांकि, मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि मेरे सारे विचारों को लोग पूर्णतः स्वीकार करें, इसके लिए मैं जोर नहीं दे सकता और न ही देता हूं। उदाहरण के लिए, मेरा विश्वास छोटे राज्यों में है। उत्तर प्रदेश एवं बिहार जैसे राज्य, मेरे विचार से, इतने बड़े हैं कि लोगों की इच्छाओं एवं आकांक्षाओं के अनुकूल इन राज्यों का प्रशासन हो ही नहीं सकता। कुछ और राज्यों की भी यही हालत है। मेरा यह ख्याल है कि कुछ छोटे राज्यों में जैसी शानदार प्रगति हुई है, उससे यह सूत्र मिल सकता है कि राज्यों का पुनर्गठन कैसे हो सकता है। इसके अलावा समानुपाती जनसंख्या वाले कई राज्य राज्यसभा में बराबर की संख्या से प्रतिनिधि भेज सकेंगे। संसदीय प्रक्रिया में भी तेजी आएगी। लेकिन फिर भी ये व्यक्तिगत विचार हैं, जिन्हें दूसरों पर मैं थोप नहीं सकता। मुझे यह भी ध्यान रखना है कि बहुदलीय भारतीय राजनीति में कुछ लचीलापन आवश्यक है।

सामाजिक आर्थिक मसलों पर जो मेरे विचार हैं, उन्हें राष्ट्रीय स्वीकृति मिले, इसके लिए मेरे जैसा एक साधारण तौर पर सक्रिय राजनीतिज्ञ कैसे जोर दे सकता हैं।

इस भूमिका के साथ मैं अपने कुछ विचारों की व्याख्या करना चाहता हूं:

आर्थिक नीति

मुझे महात्मा के एक उद्धरण से आरम्भ करने दें: जवाहरलाल नेहरू को ५ अक्टूबर १९४५ में लिखे एक पत्र में गांधी ने कहा, "मुझे विश्वास है कि अगर भारत को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करनी है एवं भारत के जरिए विश्व को भी, तो आज नहीं तो कल इस तथ्य को मानना होगा कि लोगों को गांवों में रहना पड़ेगा, शहरों में नहीं। करोड़ों लोग शहरों एवं महलों में एक–दूसरे के साथ शांति से कभी नहीं रह सकेंगे।

गांधीजी ने हालांकि यह मान लिया था कि विश्व में जिस तरह का विकास हो रहा है, उस लिहाज से इस आदर्श को अपनाने में कठिनाइयां होंगी। अतः नेहरू को सम्बोधित उसी पत्र में वे आगे लिखते हैं, "तुमको यह बिलकुल नहीं सोचना चाहिए कि मैं उसी ग्रामीण जीवन की बात कर रहा हूं, जैसा वह अभी है। आखिरकार प्रत्येक आदमी अपने सपनों की दुनिया में रहता है। मेरे आदर्श गांव में बुद्धिमान मनुष्यों का वास होगा। वे जानवरों की तरह गंदगी एवं अंधकार में नहीं रहेंगे। मर्द एवं औरत स्वतंत्र होंगे, दुनिया में किसी के भी खिलाफ अपने आपको बरकरार करने में सक्षम होंगे, कोई निठल्ला नहीं होगा, किसी को भी भोग–विलास में रहने की इजाजत नहीं होगी, प्रत्येक आदमी को अपने हिस्से का शारीरिक श्रम करना पड़ेगा। रेलवे, डाक एवं तार कार्यालय वगैरह के बारे में भी अनुमान लगाना सम्भव है। मेरे विचार से मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति ज़्यादा जरूरी है। बाकी चीजें बाद में उपलब्ध हो जाएंगी। अगर मैं मौलिक ज़रूरतों को ही भूल जाऊं, तो बाकी चीजें धरी की धरी रह जाएंगी।"

महात्मा जी के उस पत्र से पंडितजी के साथ बाकायदा पत्राचार की शुरुआत हुई। इस दौरान वे अपने विचारों की चर्चा करने के लिए मिले भी। इस बहस का समापन करते हुए गांधीजी ने १३ नवम्बर १९४५ को नेहरू को लिखा, "कल की बातचीत से मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि हमारे दृष्टिकोण में ज़्यादा अन्तर नहीं है। इसको साबित करने के लिए, जो कुछ भी मैंने समझा है, एक सूची में नीचे दे रहा हूं। अगर उसमें कोई भूल हो गयी हो, तो सुधार देना:

१. तुम्हारे अनुसार मूल प्रश्न यह है कि मनुष्यों का उच्च स्तरीय बौद्धिक,

आर्थिक, राजनैतिक एवं नैतिक विकास कैसे हो? मैं इससे पूरी तरह सहमत हूं। (२) इसके लिए सबको समान अधिकार एवं अवसर मिलना चाहिए। (३) दूसरे शब्दों में, शहरियों एवं ग्रामीणों के खाने–पीने, कपड़े एवं रहन–सहन की अन्य स्थितियां एक समान होनी चाहिए। इस समानता को प्राप्त करने के लिए लोगों को अपनी जीवन सम्बन्धी आवश्यक सभी वस्तुओं जैसे –वस्त्र, खाने–पीने की चीजें, घर एवं प्रकाश तथा पानी के उत्पादन की व्यवस्था स्वयं करनी होगी। (४) मनुष्य का जन्म अकेले में रहने के लिए नहीं हुआ है बल्कि वह अनिवार्यतः एक सामाजिक प्राणी है, स्वतंत्र एवं परस्पर निर्भर। किसी को भी दूसरे पर बोझ नहीं बनना चाहिए, न बन सकता है। अगर ऐसी जिंदगी को सम्भव बनाने के लिए हम प्रयत्न करें, तो हम इस नतीजे पर पहुंचने के लिए मजबूर होंगे कि समाज की इकाई एक गांव होगा, या इसे लोगों का एक छोटा–सा प्रबंध कर सकने लायक समूह कह सकते हो, जो आदर्श स्थिति में आत्म–निर्भर होंगे, (अपनी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं के सिलसिले में) एक इकाई की तरह एवं सामूहिक सहयोग एवं आत्मनिर्भरता की भावना के साथ बंधे होंगे।"

जहां तक मैं जानता हूं, पंडित जी ने उस बहस का गांधीजी द्वारा किया गया समापन स्वीकार किया।

यहीं पर शायद मेरे सामाजिक एवं आर्थिक विचारों का सूत्र छिपा है। गांधीजी आदर्श को सामने रखते हुए भी मोटे–मोटे अनुमान के लिए तैयार थे। गांधीजी के लेखन में ऐसे तथ्यों का अम्बार है, इस भ्रम को तोड़ने के लिए कि वे औद्योगीकरण के खिलाफ थे। उन्होंने कहा था, "मैं उद्योग के खिलाफ नहीं बल्कि उद्योगवाद का विरोधी हूं।" उनका एक दूसरा उद्धरण यहां प्रस्तुत हैः "एक साधारण बुद्धिमान आदमी की तरह मैं जानता हूं कि मनुष्य उद्योग के बिना रह नहीं सकता, इसलिए औद्योगीकरण के खिलाफ मैं नहीं हो सकता। लेकिन मशीन उद्योग की प्रस्तुति के प्रति मैं ज़्यादा चिंतित हूं। मशीन बहुत तेजी से उत्पादन करती है और अपने साथ एक ऐसी अर्थ–व्यवस्था लाती है, जो मैं समझ नहीं सकता। मैं किसी ऐसी चीज को स्वीकार नहीं कर सकता, जिसके बुरे प्रभावों को मैं देखता हूं और जो इसकी सारी अच्छाइयों पर भारी पड़ते हैं। मैं चाहता हूं कि देश के लाखों दुर्बल लोग स्वस्थ एवं खुशहाल बनें एवं उनका आत्मिक विकास हो। इस काम के लिए अभी तक हमें मशीन की ज़रूरत नहीं। यहां असंख्य बेकार हाथ पड़े हुए हैं। लेकिन अगर हमारी समझ बढ़ती है, अगर हम मशीनों की आवश्यकता महसूस करते हैं, हमें निश्चय ही मशीनों को अपनाना पड़ेगा। हम उद्योग चाहते हैं, लेकिन हम पहले उद्यमी हो जाएं। हम लोग ज़्यादा स्वावलम्बी बनें, तब दूसरों के नेतृत्व के

पीछे चलने की मजबूरी नहीं होगी। हम मशीनों को प्रस्तुत करेंगे, जहां और जब, इसकी ज़रूरत होगी। एक बार जब हम लोगों ने अहिंसा पर जीवन को ढाल लिया है, हम लोग यह भी जान लेंगे कि मशीन को कैसे नियंत्रित किया जाए।"

उन्होंने यह भी कहा, "मैं मशीनों का नहीं, मशीनों के पीछे पागल हो जाने की सनक का विरोध करता हूं। यह वह सनक है, जिसे वे मशीन से श्रम की बचत कहते हैं। आदमी श्रम को बचाता चला जाता है, जब तक हजारों लोगों को कोई काम नहीं मिलता और उनको भूख से मरने के लिए गलियों में फेंक दिया जाता है। मैं समय और श्रम को बचाना चाहता हूं लेकिन मानवता के एक नगण्य हिस्से के लिए नहीं, बल्कि सबके लिए। मैं धन को एकत्रित देखना चाहता हूं, लेकिन कुछ लोगों के पास ही नहीं, सबके पास। आज मशीन की मदद से कुछ लोग लाखों लोगों को 'गुलाम' बनाना चाहते हैं। इसके पीछे दूसरों का श्रम निस्वार्थ बचाने की प्रेरणा नहीं है बल्कि सिर्फ लालच है। मशीन के इसी अमानवीय उपयोग के खिलाफ मैं अपनी पूरी ताकत से संघर्ष कर रहा हूं।"

गांधी जी के आर्थिक दर्शन का सूत्र निम्नलिखित उद्धरण से भी मिल सकता हैं:

> "जैसा कि भारत के एक विख्यात पुत्र बताते हैं–वे और कोई नहीं, सर एम० विश्वेस्वरैया ही हैं–चाहे अंग्रेज के पास ३० गुलाम हों–या ३६ भी हो सकते हैं, मैं भूल–सुधार की गुंजाइश के साथ कहता हूं–एक अमेरिकी ३३ गुलामों का मालिक होता है। व्यक्तिगत तौर पर मैं सोचता हूं कि सही अर्थशास्त्र में गुलामों को रखने के लिए, चाहे वे मनुष्य हों, जानवर या मशीन, कोई जगह नहीं है, जिसे धर्म के साथ बदला जा सके। अर्थशास्त्र में गुलामी के लिए कोई स्थान नहीं है।"

गांधीजी मानते थे कि अगर हम अर्थ–व्यवस्था का प्रबंध इस तरह कर सकें कि उत्पादन एवं वितरण साथ–साथ एवं बराबर हो, तो शोषण एवं शक्ति के केन्द्रीकरण की निम्नतम सम्भावना रहेगी। गांधीजी ने औद्योगीकरण के मूल्य एवं अनिवार्यता को समझा एवं उसका विरोध नहीं किया। वह विकास का एक ऐसा रास्ता अपनाना चाहते थे, जिससे आदमी एक ऐसी प्रक्रिया का शिकार न हो जाए, जिसका अंत शोषण, निरकुंशता एवं गुलामी में हो।

मैंने उपदेश देने से थोड़ा ही कुछ ज़्यादा किया है, जिसे गांधीजी ने एक व्यावहारिक एवं औचित्यपूर्ण आर्थिक नीति के तौर पर प्रस्तुत किया था। पंडितजी का गांधीजी से विरोध था लेकिन इसके प्रमाण हैं कि वे

अपने जीवन के अंतिम दिनों में गांधीजी के विचारों के करीब पहुंच रहे थे।

इस संसार में कोई भी, उद्योग को, यहां तक कि बड़े उद्योगों को भी खत्म करना नहीं चाहेगा। मैंने कुछ लोगों को यह कहते सुना है कि अगर "छोटा ही खूबसूरत होता है, तो बड़ा दरियादिल।" यह हो सकता है, लेकिन विशालता का अर्थ आर्थिक सत्ता के एकत्रीकरण, बड़े पैमाने पर बेकारी एवं गरीबी नहीं होना चाहिए। बड़े पैमाने पर उत्पादन की भी एक सीमा है, अगर क्रय–शक्ति न हो एवं परिणामतः उत्पादित जिन्सों के लिए बाज़ार ही उपलब्ध न हो।

यही कारण है कि मैं लघु उद्योगों की वकालत करता हूं, यहां तक कि घरेलू (कुटीर) उद्योगों की भी, जो हितकारी होते हैं। इसके और भी कारण हैं, जिसकी चर्चा मैं आगे करूंगा।

लेकिन यह स्पष्ट होना चाहिए कि जिस दुनिया में आज हम रह रहे हैं, उसमें प्रतिरक्षा की मजबूती, कृषि कार्य को सहायता देने, स्वावलम्बन एवं दूसरे बहुत सारे कार्यों के लिए हमें न सिर्फ उद्योगों को बरकरार रखना है बल्कि उद्योगों को तेजी से फैलाना भी है। भारी उद्योगों की जिस अंतः संरचना को पंडित जी ने बुद्धिमत्ता से खड़ा किया था, वह आपत्ति काल में भी हमारे लिए सहायक सिद्ध हुआ है। वस्तुतः इसी अंतः संरचना की उपलब्धता के कारण ही आज हम छोटे उद्योगों की स्थापना के बारे में सोच भी सकते हैं।

हालांकि मैं यह मानता हूं कि व्यापारिक–औद्योगिक समुदाय की आर्थिक सत्ता पर नियंत्रण होना चाहिए। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब व्यापार एवं निजी बैंक समेत उद्योगों के कुछ हिस्सों पर राज्य का सीधा नियंत्रण हो। हम उसकी इजाजत नहीं दे सकते कि एक छोटा–सा समूह लोगों की फटेहाली की कीमत पर दिनोंदिन मोटा होता जाए एवं सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रक्रियाओं पर भी उसकी गहरी पकड़ हो जाए। इन सार्वजनिक उद्योगों को ज़्यादा मुनाफा देने वाला जैसा बनाना होगा। कीमत दर की नीति भी ऐसी होनी चाहिए कि बड़े पैमाने पर रोज़गार उपलब्ध कराने के लिए आवश्यक पूंजी इकट्ठी हो सके।

पंडित जी की नीतियांः मेरा मूल्यांकन

पंडितजी जैसे महामानव से मतभेद की बात कहना, मेरे जैसे साधारण आदमी के लिए गुस्ताखी होगी। हमारी आजादी के पहले पंडितजी लोगों के लोकप्रिय नेता हुआ करते थे एवं हम सभी उनके विनम्र स्वयंसेवक।

अपनी मृत्यु तक वे हिन्दुस्तान के निर्विरोध नेता रहे, जैसा डॉ० लोहिया ने भी एक बार उनको कहा था।

वे हमारे गणतांत्रिक संविधान के शिल्पी हैं। उन्होंने एक ऐसी विदेश नीति की योजना बनायी एवं इतनी कुशलता से उसे लागू किया कि पूरे विश्व में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी। उन्होंने पंचवर्षीय योजना की आधारशिला रखी और जबर्दस्त तकनीक एवं औद्योगिक विकास के रास्ते पर इस देश को आगे बढ़ाया। हमारी आजादी के निर्माण काल में उनके नेतृत्व की भूमिका को भारत की जनता हमेशा कृतज्ञता पूर्वक याद रखेगी।

इतिहास हालांकि एक निर्मम अभियोजक होता है। इतिहास की बारीक छानबीन एवं तीव्र आलोचना से किसी भी देश का कोई महान आदमी आज तक बच नहीं पाया है। नेहरू जैसा महान पुरुष भी इस ऐतिहासिक विश्लेषण से कैसे बच सकता है?

योजना सम्बंधी उनके लेखों का हमेशा लाभ नहीं मिला। उनकी औद्योगिक नीति ने एकाधिकारवाद को जन्म दिया, उनकी चुनाव प्रक्रिया ने धन–शक्ति को बढ़ावा दिया, उनके संविधान ने अक्खड़ तरीके से राज्य सरकारों को बर्खास्त करने एवं विधान–सभाओं को भंग करने की स्वीकृति दी, एवं उनकी आर्थिक नीति से निर्भरता बढ़ी एवं हमारी आंतरिक नीति पर विदेशी प्रभुत्व बढ़ा, साथ ही साथ बेकारी एवं आर्थिक असमानता की खाई और बढ़ी।

ऐसे विश्लेषण से हालांकि उनकी महानता, उनकी दृष्टि की तेजस्विता एवं जोरदार प्रयासों में कोई कमी नहीं आती। एक नेता को सिर्फ चापलूस जैसे अनुगामी की ज़रूरत नहीं होती एवं नेहरू को किसी खुशामदी की आवश्यकता नहीं। वे प्रशंसकों एवं निन्दकों, दोनों से, कहीं ज़्यादा महान हैं।

उनके जीवन काल में ही मैंने निर्भयता से उनकी कुछ नीतियों–जैसे सामूहिक खेती का विरोध किया था और उस हवाले पर उत्तर प्रदेश में अपना मंत्री पद त्याग दिया। मैं तब भी कहता था और आज भी, कि यद्यपि उन्होंने हिन्दुस्तान की तेजी से आर्थिक विकास की योजना बनायी, लेकिन वे देश की अक्षय निधियों का इस्तेमाल करने में असफल हो गये और जिस तरह के विकास की नीति उन्होंने तैयार की और लागू की, उसके नतीजों को वे पूरी तरह परख नहीं सके।

अनेक पंचवर्षीय योजनाओं एवं हजारों–करोड़ों रुपये निवेशित करने के बावजूद आज भयानक बेकारी एवं गरीबी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पहले की आर्थिक नीतियों में कुछ खामियां रह गयी थीं, जिनको दूर करने की ज़रूरत हैं।

ग्राम विकास की मेरी नीति

जैसा कि मैं अक्सर कहता हूं कि देहातों की तरह शहर में भी गरीबी है लेकिन कठोर सत्य यह है कि गरीबों की बेहिसाब आबादी गांवों में रहती है। इस गरीबी को हम कैसे दूर करेंगे?

संयोगवश, नयी कृषिक तकनीक ने खेतिहर उपज को जबर्दस्त रूप से बढ़ाने का हमें मौका दिया है। कल्पनाशील सिंचाई योजनाओं से हमें मौसम की सनक पर काबू पाने में मदद मिलेगी। अन्य निवेशों को भी आसानी से खरीदे जाने लायक मूल्य पर उपलब्ध कराना होगा। बिना किसानों को प्रोत्साहन दिये खाद्यानों का उत्पादन जैसे का तैसा बना रहेगा, जैसा कुछ वर्ष पहले सही निवेश एवं मूल्य दर की नीति के अभाव में हुआ था। हम लोग फिर से उस काल में लौटना बर्दाश्त नहीं कर सकते, जब बड़े पैमाने पर लगातार खाद्यान्नों का आयात करना पड़ता था। हमारी अर्थव्यवस्था अभी भी कृषि–प्रधान है।

नयी तकनीक ने छोटी जोत के फार्मों को भी लाभकारी बनाना सम्भव कर दिया है। अतः तीव्र खेतिहर विकास बड़ी संख्या में लोगों को लाभदायक रोज़गार दिला सकता है एवं खाद्यान्नों, दालों, चीनी, खाद्य तेलों की कमी होने से रोक सकता है।

खेती के केन्द्र में है किसान, इसलिए उसके साथ आदर एवं कृतज्ञता से पेश आना होगा। उसको अपने श्रम का लाभदायक प्रतिफल मिलेगा, यह आश्वासन जरूर मिलना चाहिए।

आज समस्या यह है कि खेती पर बहुत ज़्यादा लोग निर्भर हैं और उनके जीवन–निर्वाह के लायक साधन जुटाना असम्भव है। बड़े पैमाने पर खेतिहर उत्पादन के युग को खत्म करना होगा। इस तरह की खेती सामंत–गुलाम सम्बंधों को जन्म देती है। भूमिहीन मजदूर बंधुआ–गुलाम की जिंदगी जीते हैं। उनको मुक्त कराना है। बड़ी जोत वाले फार्मों को तोड़ने के बाद भी भूमि पर काफी दबाव रहेगा।

इसलिए लाभदायक रोज़गार के अन्य उपायों का पता लगाना होगा और इन उपायों को गावों में ही खोजना होगा। इसके पहले कि शहरों की तरफ पलायन हो एवं परिणामतः शहरी विकास की विस्फोटक स्थिति पैदा हो, जिससे भीड़–भाड़, झुग्गी–झोंपड़ी एवं प्रदूषण जैसी समस्याएं जुड़ी हुई हैं, देहाती उद्योगों एवं सामाजिक अंतः संरचना वगैरह से ही लाभदायक रोज़गार का अवसर निकालना पड़ेगा। इससे न सिर्फ देहातों एवं शहरों के बीच की आर्थिक एवं सांस्कृतिक खाई पटेगी बल्कि सामाजिक धनतंत्र का भी खात्मा होगा।

अंत में देहात के बेकारों, भूमिहीनों एवं अन्य प्रकार के गरीबों को भी संगठित करना होगा। उनको संगठित करना हालांकि मुश्किल है। इस आशय की कुछ अतिवादी कोशिशें अपने आप में असफल साबित हुई हैं। आज भूमिहीन या कृषक मजदूरों की संख्या पूरी आबादी की एक चौथाई है, एक हेक्टेयर से कम जोत वाले किसानों की भी उतनी ही संख्या है।

देहात के गरीबों को संगठित करने का एक ही तरीका है, वह है उनको स्थानीय सामाजिक एवं आर्थिक उद्योगों में रोज़गार मुहैया कराना एवं न सिर्फ गांव के धनिकों बल्कि शहरी लॉबी से भी उनकी सामूहिक मोल–भाव की शक्ति को विकसित करना।

भूमि–सुधार

बहुत से लोग मुझे कुलकों का नेता कहते हैं। उनके कहने का तात्पर्य यह है कि मैं धनी किसानों का प्रतिनिधित्व करता हूं। मेरी पूरी जिंदगी, लेखनी एवं उत्तर प्रदेश में मंत्री के बतौर कार्य, इस झूठे दोषारोपण की गवाही है। उत्तर प्रदेश ही एक मात्र ऐसा राज्य है, जिसने मेरे जिहाद के कारण जमींदारों का दुबारा ज़मीन पर कब्जा नहीं होने दिया। मैं आमूल भूमि सुधार एवं होल्डिंग को सीमाबद्ध करने के पक्ष में हूं, जिसका सिद्धांत यह है कि ज़मीन का बंटवारा इस तरह से हो कि उसका प्रबंध एक परिवार, बिना मजदूरों को बहाल किये या बुआई या कटाई के लिए कम से कम मजदूरों को बहाल किये, कर सके।

मैं सामूहिक खेती का विरोधी हूं, जो भूमि–औद्योगिक समूहों पर खेती करने से अनेक कारणों से अलग है। भारतीय किसानों का अपनी ज़मीन से बहुत लगाव होता है। इसलिए किसानों का भयानक तरीके से अंत करके ही उनको ज़मीन के प्रति सीधे लगाव से वंचित किया जा सकता है। इसके अलावा यह खेतिहर विकास को नौकरशाही के रास्ते पर ले जायेगा। भारत की श्रम–शक्ति निधि भी ऐसी सामूहिक खेती की इजाजत नहीं देती।

जाति का सवाल

मैं जिंदगी भर इस बात को कहता रहा हूं कि जातिगत तिरस्कार गरीबों की, खासकर गांवों में, आर्थिक दुर्दशा को और बढ़ाता है। हरिजनों को महात्मा गांधी ने ईश–पुत्रों की संज्ञा दी थी। सिर्फ भावुक तरीके से जातिगत अत्याचार की समस्याओं का समाधान नहीं होगा। जाति–व्यवस्था के अवरोध तथा भू एवं औद्योगिक सामंतों को पूरी तरह खत्म करने के

साथ ही साथ राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिक बहुल अर्थ–व्यवस्था के विकास का एक स्थायी हल खोजना होगा। पेरियार ई० वी० रामास्वामी जैसे सामाजिक क्रांतिकारी की ज़रूरत शायद देश के प्रत्येक हिस्से में होगी।

दशकों से हरिजनों पर अत्याचार हो रहा है। राजनीतिक पार्टियां अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए इस दारुण परिस्थिति का शोषण करती हैं। सिर्फ नाटकीय अंदाज में प्रभावित क्षेत्रों की यात्रा से इसका अंत नहीं किया जा सकता।

संगठित मजदूर वर्ग

मेरा पहले भी यह विचार रहा है और आज भी वही है कि संगठित क्षेत्र की सुविधाएं बढ़ाते जाना अन्याय है, जब कि बहुसंख्यक आबादी अधनंगी, अंशतः नंगी एवं बेघरबार है। विकास के बढ़ने के साथ–साथ अलगाव का बढ़ना हमारे समय का विरोधाभास है।

निजी एवं सार्वजनिक खर्चों में तड़क–भड़क एवं फिजूलखर्ची के खिलाफ कड़ी कार्रवाई शायद इसका एक इलाज हो सकती है। उच्च–पदस्थ स्थानों पर किफायत बरतने के लिए कठोर तरीके से दबाव डालना होगा। इसके बाद ही हम मजदूर वर्ग को कह सकते हैं कि वह गरीबी एवं बेकारी को दूर करने के प्रयासों में साथ दे। इसके अलावा आमदनी, धन एवं बचत की सीमा भी तय करनी होगी। हम मजदूरों को त्याग करने के लिए नहीं कह सकते अगर हम ज़्यादा धनी लोगों को अपनी तड़क–भड़क की जिंदगी छोड़ देने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। शहरी प्रशासकीय अंतः संरचनाओं के बड़े अंश को भी तोड़ना होगा, ताकि दुर्लभ साधनों का उपयोग सिर्फ कुर्सी तोड़ने वाली नौकरियों के लिए नहीं– उपजाऊ रोज़गार के लिए हो सके।

इससे भी ज़्यादा स्थायी हल है रचनात्मक गतिविधियों का फैलाव, जो अनुविहित विधियों को सीमाबद्ध करेगा। यह सब मिलकर शैक्षणिक एवं प्रशासकीय व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन ला देंगे।

शहरी समस्या

अनियंत्रित विकास के नतीजों में से एक है नौकरी की तलाश में लोगों का गांवों से शहर की ओर पलायन। बहुतों को नौकरी नहीं मिलती, जिससे वे झुग्गियों में दयनीय जिन्दगी बसर करने को मजबूर हो जाते हैं। एक कल्पनाशील आवासीय योजना के अलावा बड़े पैमाने पर रोज़गार देने

की योजना से ही इस दुखद स्थिति का अन्त हो सकता है। इस बीच शहर में रहने वाले गरीबों की जनगणना करानी होगी एवं विशाल पुनर्वास योजनाएं तैयार करनी पड़ेंगी।

आवास, आवागमन, यातायात के साधनों, कानून एवं व्यवस्था जैसी शहरी समस्याओं का तत्काल निदान हो, इसकी युद्ध–स्तर पर कोशिश होनी चाहिए। पुलिस प्रणाली को सुचारु बनाना होगा। रोज़गार–स्थल के करीब दफ्तरों एवं आवासीय योजनाओं को स्थापित करने पर विचार करना होगा। पब्लिक स्कूल व्यवस्था की जगह पर तेजी से विस्तृत होने वाली स्कूली सुविधाओं को मुहैया कराना होगा, जिसमें आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए मुफ्त शिक्षा का प्रावधान हो। शायद एक नये शहरी पुलिस बल का भी गठन करना पड़ेगा, जो बच्चों, बूढ़ों, महिलाओं एवं अन्य को सड़क पार करने, बसों में चढ़ने–उतरने में मदद दे। शहरी समस्या का एक मानवीय निदान आवश्यक है।

अल्पसंख्यक

हमारी धर्मनिरपेक्षता का अर्थ बहुसंख्यक समुदाय के अधिकारों की अवहेलना नहीं है और न किसी एक समुदाय की लल्लो–चप्पो करना। लेकिन यह मानना होगा कि अल्पसंख्यकों में, चाहे वे किसी भी देश में हों, हमेशा असुरक्षा की भावना रहेगी, जिसे दूर करने का कर्तव्य राज्य एवं बहुसंख्यक समुदाय का है। एक आर्यसमाजी की तरह मैं हिन्दू समाज में क्रांतिकारी सुधार के पक्ष में हूं एवं दहेज, जाति–प्रभुत्व एवं महिलाओं के खिलाफ जुल्म का अन्त चाहता हूं लेकिन विवाह, तलाक एवं उत्तराधिकार से सम्बन्धित अल्पसंख्यकों के पर्सनल लॉ की रक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि उनमें जो सुधार हो सकता है, वह उन समुदायों के लोगों द्वारा किये गये आन्दोलनों के नतीजे के तौर पर ही हो सकता है न कि राज्य द्वारा थोपे जाने से। वैसे दण्ड विधान एक ही होगा, जो देश के सारे निवासियों पर समान रूप से लागू होगा। सभी धर्मों के सभी आराधना–स्थलों की सुरक्षा की जिम्मेवारी राज्य की होगी एवं धार्मिक विश्वास की पूर्ण स्वतंत्रता तथा उसके अनुसार आचरण की भी गारंटी होनी चाहिए।

सिर्फ भय एवं आशंका ही अल्पसंख्यक समुदायों में किसी भी प्रकार की आक्रामकता को जन्म देती है। इस असुरक्षा की भावना को मिटाना ही इसका निदान है। लोगों के नागरिक अधिकारों की रक्षा करना जिन अधिकारियों का कर्तव्य है, उनकी इस सिलसिले में विशेष जिम्मेवारी है।

संघवाद भारत का अर्द्ध–संघवादी चरित्र संविधान निर्माण के दौर

में उमड़ी राष्ट्रीयता का ही प्रतिबिम्ब है। गांधीजी, जिन्होंने इस लहर को उठाया, ने यह भी जान लिया था कि विभिन्न सांस्कृतिक एवं भाषाई समूहों की आकांक्षाओं का गला नहीं घोंटा जा सकता। भारत की एकता एवं मजबूती को तभी बचाकर रखा जा सकता है, जब लोगों को एक बड़े परिवार के सदस्यों की तरह साथ–साथ सोचने एवं व्यवहार करने जैसा बनाया जाये एवं उनमें प्रशासन को सहयोग देने की भावना हो। और यह तभी सम्भव है, जब सत्ता का विकेन्द्रीकरण नीचे तक किया गया हो। यह समय है एक नये संघवाद की रचना के बारे में सोचने का। हालांकि सुरक्षा, लोगों के प्रजातांत्रिक अधिकारों की रक्षा, आर्थिक स्थायित्व, एवं पेशेवर श्रेष्ठता के स्तर को बरकरार रखने के लिए केन्द्र को निश्चय ही मजबूत करना होगा।

भाषा

देश के प्रधानमंत्री के तौर पर जो आश्वासन मैंने अपने पहले प्रसारण में दिया था, उसके महत्त्व को लोगों ने ठीक से समझा नहीं है। वह सिर्फ एक नकारात्मक रवैया नहीं था कि कोई भी भाषा थोपी नहीं जायेगी। वह एक सकारात्मक ऐलान था कि एक स्वीकृत सम्पर्क भाषा को विकसित करना होगा। इस संवेदनशील मुद्दे पर विचार करने के लिए हमें सभी राजनीतिक दलों एवं मुख्यमंत्रियों का एक सम्मेलन आयोजित करना पड़ेगा। इस बीच हमें यह देखना होगा कि कोई भाषा स्वदेशी या विदेशी, किसी भी हिस्से के लोगों पर थोपी न जाये।

राजनीतिक दल, नागरिक अधिकार एवं पुलिस–सुधार

मैं मुक्त समाज, मुक्त प्रशासन एवं मुक्त सरकार का पक्षधर हूं। अत्यधिक गोपनीयता–जहां राष्ट्रीय हित के तकाजों का दबाव हो, उसे छोड़कर–का मैं विरोध करता हूं। मैं राजनीतिक दलों की स्वतंत्र गतिविधियों, चाहे वह विवादास्पद ही क्यों न हों, का भी पक्ष लेता हूं। भारत की समस्याओं का समाधान उसकी जनता के संघर्षों के जरिये ही हो सकता है। गांवों एवं शहरों के गरीब जाग चुके हैं और अब उन्हें दबाकर नहीं रखा जा सकता। नागरिक अधिकारों को हमारे राजनीतिक विकास का ठोस आधार होना चाहिए। निरंकुश सत्ता का कोई सिद्धांत, लोगों की मुक्ति के किसी सुगम अधिनायकवादी उपाय का कोई विचार, मेरी प्रकृति से मेल नहीं खाता।

राजनीतिक दलों की बहुलता भारत जैसे विविधता वाले देश में

अनिवार्य है। हम अलग–अलग राजनीतिक दर्शनों के जैविक विकास को रोक नहीं सकते।

पुलिस प्रणाली को सुचारु बनाना है। आम पुलिसकर्मी की मर्यादा को भी बचाना है। पुलिसकर्मियों को अपने व्यवहार से जनता का दोस्त बनना चाहिए। अपराध अनुसंधान प्रक्रिया को भी मजबूत बनाना होगा।

जनसंख्या नियंत्रण

आम तौर पर यह माना जाता है कि गरीबी का कारण विशाल आबादी है। गरीबी अशिक्षा एवं अंधविश्वास पर सीधा आक्रमण कर, हम लोग जनसंख्या को स्थिर कर सकते हैं। विभिन्न किस्म की सेवाओं का तेजी से विस्तार करना पड़ेगा, जबकि देश के दुर्लभ साधनों का उपयोग गरीबी को मिटाने एवं लोगों की सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को ऊपर उठाने में करना होगा, जिसका जनसंख्या नियंत्रण पर व्यापक असर पड़ेगा।

मीडिया नीति

मुझे पूरा विश्वास है कि तथाकथित बुद्धिजीवी मंच से व्याख्यान देकर लोगों को शिक्षित नहीं कर सकते। लोगों में खुद को शिक्षित करने लायक पर्याप्त समझदारी है, जैसा किसी विख्यात आदमी ने कहा था–अगर आप लोगों को यह बता दें कि परिस्थिति कैसी है, वे इतने बुद्धिमान हैं कि अपनी समस्या आज ही हल कर लें।

रॉबर्ट रोजेलिनी ने कहा हैः

> "जनसंचार सुविधाओं के जरिये हम एक ऐसे युग में आ चुके हैं, जहां बातें बहुत ज़्यादा हो चुकी हैं, जो वस्तुतः जनसंचार के साधनों द्वारा रचित नकली बौद्धिकता एवं बेकार की जानकारी पर आधारित उप–संस्कृति है।"

जानकारी हमेशा बुद्धिमत्ता के समतुल्य नहीं होती है। मेरे विचार से संचार, खासकर सरकारी मीडिया, और ज़्यादा जनोन्मुखी होना चाहिए, न कि सरकारी रुझान जैसा। लोगों को उपदेश देने की संस्कृति की जगह लोगों से सीखने की संस्कृति को लाना चाहिए।

प्रचार–प्रकाशन एवं मत–प्रचार आम तौर पर एक अवमानित संस्कृति है। किस सीमा तक यह दूषित हो सकती है, इसे आपातकाल के दौरान लोगों ने देखा सूचना–तंत्र को बहुत ज़्यादा सरल बनाना होगा। हमारे

पास ग्रामीण वार्ताकारों की एक ऐसी संस्था अवश्य होनी चाहिए, जो सिर्फ वस्तुगत सूचना के प्रबंधक का काम कर सकें एवं लोगों के अनुभवों को उनके ही लिए संक्षेपण में मदद दे सकें। हम लोगों को बड़ी संख्या में ग्रामीण नाट्यशालाओं, वाचनालयों एवं पुस्तकालयों के गठन के बारे में भी विचार करना चाहिए।

हमें बड़ी संख्या में ट्रांसमीटरों के बारे में सोचना होगा, जिसमें से प्रत्येक की पहुंच कुछ लाख लोगों से ज़्यादा की न हो। स्थानीय लोगों के सांस्कृतिक संप्रेषण की गुंजाइश पर ज़्यादा जोर देना होगा। जहां तक सम्भव हो, जन–संस्थाओं का ऐसे ट्रांसमीटरों पर नियंत्रण होना चाहिए। हमें गैर–परम्परागत तरीके से सोचना है। उसी तरह, हमें ऐसे बहुत से ग्रामीण समाचार–पत्रों को निकालने की योजना भी बनानी होगी, जिनका संचालन लोग स्वयं करेंगे। सरकारी मीडिया या बड़े व्यापारिक महानगरीय स्वामित्व वाले निजी मीडिया द्वारा लोगों के दिमाग को नियंत्रित करने की प्रणाली को खत्म करना होगा।

यह सब कहते हुए भी मैं इस तथ्य पर जोर देना चाहता हूं कि इन सब खामियों के बावजूद प्रेस को सरकारी नियंत्रण से मुक्त रखना होगा। सरकारी वितरण पर इसकी निर्भरता को खत्म करना होगा।

यहां तक कि, अगर प्रेस मेरे एवं मेरी नीतियों के खिलाफ भी हो, जैसा अमूमन वह है, तो भी मैं प्रेस की स्वतंत्रता को कम करने में विश्वास नहीं रखता। प्रेस ने गांधीजी के युग में जो क्रांतिकारी भूमिका अदा की थी, उसी भूमिका के लिए उसे हमें फिर से तैयार करना होगा।

चौधरी चरण सिंह द्वारा रचित कृतियां

शिष्टाचार, १९४१. (२०१ पृष्ट)

हाउ टू एबोलिश जमींदारीः ह्विच एल्टरनेटिव सिस्टम टू एडाप्ट। (ज़मींदारी उन्मूलन कैसे करें: किस वैकल्पिक प्रणाली को अपनाएं) १९४७. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, संयुक्त प्रांत।

एबोलिशन ऑफ ज़मींदारीः टू अल्टरनेटिव्ज। (जमींदारी उन्मूलनः दो विकल्प) १९४७. किताबिस्तान, इलाहाबाद. (२६३ पृष्ट)

एबोलिशन ऑफ जमींदारी इन यू० पी०: क्रिटिक अंसरड। (उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलनः आलोचकों को जवाब) १९४९. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, संयुक्त प्रांत।

व्हितहर कोआपरेटिव फार्मिंग? (सामूहिक खेती की दिशा?) १९५६. इलाहाबादः सुपरिन्टेन्डेन्ट प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, उत्तर प्रदेश।

एग्रेरियन रिवोल्यूशन इन उत्तर प्रदेश। (उत्तर प्रदेश में कृषि क्रांति) १९५७. प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, गवर्नमेंट ऑफ उत्तर प्रदेश १९५८ लखनऊ, सुपरिन्टेन्डेन्ट, प्रिंटिंग एंड स्टेशनरी, उत्तर प्रदेश। (६६ पृष्ट)

जॉइंट फार्मिंग एक्स–रैडः द प्रॉब्लम एंड इट्स सोल्यूशन। (संयुक्त खेतीः समस्या और समाधान) १९५९. किताबिस्तान, इलाहाबाद. (३२२ पृष्ट)

इण्डियाज पॉवर्टी एण्ड इट्स सोल्यूशन। (भारत की गरीबी और उसका समाधान) १९६४. एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई। (५२७ पृष्ट)

इण्डियन इकोनॉमिक पॉलिसीः दि गांधियन ब्लूप्रिंट। (भारत की अर्थनीतिः एक गांधीवादी रूपरेखा) १९७८. विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (१२७ पृष्ट)

इकोनॉमिक नाइटमेयर ऑफ इण्डियाः इट्स कॉज़ एण्ड क्योर। (भारत की भयावह आर्थिक स्तिथिः कारन एवं निदान) १९८१. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (५९८ पृष्ट)

लैण्ड रिफॉर्म्स इन यू० पी० एण्ड दि कुलक्स। (उत्तर प्रदेश में भूमि सुधार एवं कुलक वर्ग) १९८६. विकास पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। (२२० पृष्ट)

'विशिष्ट रचनाएंः चौधरी चरण सिंह' भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री चरण सिंह द्वारा १९३३ और १९८५ के बीच लिखित २२ महत्वपूर्ण लेखों और भाषणों का संग्रह है। इस पुस्तक के अध्ययन से आज का पाठक वर्ग जान सकेगा कि मौजूदा समय की चुनौतियां न तो नई हैं और न ही समाधानहीन। इनसे निपटने के लिए एक मन–सोच अथवा जिगरा चाहिए, जो निश्चय ही धरा–पुत्र चरण सिंह में था। उनका लेखन उस प्रकाशस्तंभ की तरह है जो समुद्र में भटके हुए जहाजों को किनारे तक आने का रास्ता दिखाता है। उनके लेखन के आलोक में हम मौजूदा चुनौतियों को सही परिप्रेक्ष्य में न केवल समझ सकते हैं अपितु उनका समाधान भी पा सकते हैं। इन लेखों में उनकी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि के दर्शन होते हैं। विषयवस्तु की दृष्टि से इन लेखों को सामाजिक लेखन, आर्थिक लेखन, राजनीतिक लेखन एवं उपसंहार – चार खण्डों में विभाजित किया गया है।

चौधरी चरण सिंह की अध्यात्मिक अंतश्चेतना और राजनीतिक मेधा महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं महात्मा गांधी से अनुप्रेरित रही, तो सरदार पटेल उनके नायक रहे। इन विभूतियों पर चौधरी साहब ने अपने विचार लेखों में प्रस्तुत किये हैं। जाति–प्रथा, आरक्षण, जनसंख्या नियंत्रण, राष्ट्रभाषा जैसे सामाजिक मुद्दों के साथ ही शिष्टाचार जैसे विरल विषय पर भी दो लेख **खण्ड एकः सामाजिक लेखन** में दिये गये हैं।

चौधरी साहब भारत की उन्नति का मूल आधार कृषि, हथकरघा और ग्रामीण भारत को मानते थे। उनकी दृष्टि में ग्रामीण भारत ही वह नियामक तत्व रहा जिसे प्रमुखता देकर देश को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया जा सकता है, साथ ही बेरोजगारी जैसी विकट समस्या को भी दूर किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश में भूमि सम्बंधी सुधारों और जमींदारी समाप्त करने को लेकर चौधरी चरण सिंह पर धनी किसानों के पक्षधर होने के आरोप विरोधियों ने लगाये। उनका उन्होंने बेहद तार्किक ढंग से उत्तर दिया है। गांव–किसान और खेती के प्रति उपेक्षापूर्ण नीतियां एवं काले धन की समस्या जैसे तथा उपरोक्त विषयों पर केन्द्रित लेख **खण्ड दोः आर्थिक लेखन** के अन्तर्गत दिये गये हैं।

खण्ड तीनः राजनीतिक लेखन के अन्तर्गत भारत की लम्बी गुलामी के मूल कारणों का विश्लेषण, गांधी–चिंतन, देश में पहली गैर–कांग्रेसी जनता पार्टी की सरकार की आधारभूत नीतियां, देश विख्यात माया त्यागी कांड का समाजशास्त्रीय विश्लेषण, भाषा आधारित राज्यों के खतरे आदि मुद्दों के अलावा उनके नायक सरदार पटेल की स्मृति पर आधारित लेख हैं। इसी खण्ड में चौधरी साहब के ऐतिहासिक महत्व के दो भाषण भी संकलित हैं, जो लोकशाही पर संकट और राष्ट्रीय विघटन के खतरों के प्रति सचेत करते हैं।

अंतिम **खण्ड चारः उपसंहार** है, जिसमें चौधरी साहब ने राजनीति, समाज नीति और देश से सम्बंधित अधिकतर मुद्दों पर संक्षेप में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं।

Charan Singh Archives
www.charansingh.org

मूल्य ₹६६